नेताजी का विदेशी भूमि से स्वतंत्रता संग्राम

डॉ. भगवानदास अहिरवार

प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, वण्डा (म.प्र.)

सारांश -

नेताजी सुभाष चंद्र बोस भारत के उन महान क्रांतिकारियों में से थे, जो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में रहकर न केवल महात्मा गांधी के आलोचक रहे, बल्कि उन्होंने कांग्रेस में ही महात्मा गांधी के एक छत्र नेतृत्व को चुनौती दी। अपनी इसी लोकप्रियता के बल पर वह गांधी जी की इच्छा के विरुद्ध 1939 के त्रिपुरी अधिवेशन में कांग्रेस के द्वारा अध्यक्ष निर्वाचित अध्यक्ष निर्वाचित किए गए। यह बात अलग है कि उन्हें महात्मा गांधी के छल एवं प्रपंच के चलते न केवल कांग्रेसी अध्यक्ष पद से त्याग देना पड़ा, बल्कि कांग्रेस से ही उन्होंने त्याग पत्र दे दिया था। नेताजी देश के स्वतंत्रता संग्राम में उस विचारधारा के नुमाइंदे थे, जिन्होंने स्वयं कभी पिस्तौल बंदूक का प्रयोग नहीं किया, लेकिन उन्होंने गांधी की अहिंसा के प्रति अत्यधिक आस्था, अस्थिर सोच, समझौतावादी प्रवृत्ति, काल्पनिक सोच एवं सुनहरे स्वप्नों का खुलकर विरोध किया, वह गांधी के प्रति श्रद्धावान रहे लेकिन स्वयं कभी गांधी नहीं बने।

मुख्य शब्द - राष्ट्रीय कांग्रेस, स्वतंत्रतासंग्राम, गांधीवाद, स्वदेश

नेता जी गांधी जी के प्रति अगाध श्रद्धा रखते थे किन्तु गांधीवाद को आधुनिक समाज के लिये अव्यवहारिक मानते थे। नेताजी जब 1924 में कोलकाता क्युनिसिल कारपोरेशन के एक्जीक्यूटिव ऑफिसर नियुक्त हुए तभी से ब्रिटिश सरकार उनकी क्रांतिकारी गतिविधियों के लिए उन पर नजर रखती आ रही थी वह जब चाहती तब उनके ऊपर अभियोग दर्ज कर उन्हें जेल में डाल देती थी। उन्हें क्रांतिकारियों को भड़काने वाला सबसे खतरनाक व्यक्ति बताया गया था, वहीं दूसरी ओर जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि गांधी की इच्छा के विरुद्ध 1939 के त्रिपुरी अधिवेशन में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष पद पर पुनः निर्वाचन होने तथा गांधी जी व उनके सहयोगियों द्वारा किये गये असहयोग एवं षडयन्त्रों के चलते उन्हें कांग्रेस अध्यक्ष पद छोड़ने को विवश होना पड़ा था। कांग्रेस अध्यक्ष पद से त्याग देने मात्र से गांधीवादियों की समस्या हल नहीं हुई, बल्कि उनकी समाजवादी सोच एवं वामपंथी नीतियों के चलते गांधी भवन के समस्त अनुयायी जिनका कांग्रेस में बोलबाला था, वे सभी नेता जी के विरुद्ध खड़े हो गए। नेहरू जो उनकी समाजवादी एवं क्रांतिकारी सोच के कायल थे तथा कंधे से कंधा मिलाकर काम करते थे वह भी गांधीवादी खेमे में जाकर नेताजी के विरोधी हो गए। स्वयं नेता जी ने स्वीकार किया कि उन्हें सर्वाधिक निराशा जवाहरलाल नेहरू से हुई उधर भारत के प्रमुख समाचार भी नेताजी के विरुद्ध अभद्र टिप्पणियाँ प्रकाशित करने लगे। इन सभी परिस्थितियों ने नेताजी सुभाष

चंद्र बोस को इस बात पर मनन करने के लिए विवश किया कि अब भारत में रहकर देश की आजादी प्राप्ति की दिशा में कुछ किया नहीं जा सकता। यहां रह जेल की सजा काटने से बेहतर है कि अवसर का लाभ उठाते हुए, द्वितीय विश्व युद्ध से घिरे ब्रिटिश साम्राज्यवाद को तहस-नहस करने व इससे भारत मुक्ति हेतु, इसके ही शत्रुओं का सहयोग लिया जाए।

अपनी इसी सोच एवं रणनीति को क्रियान्वित करने के उद्देश्य से नेताजी अपने ब्रिटिश पुलिस की अभिरक्षा में विरूद्ध होने के बावजूद भी पुलिस को चकमा देकर 18 जनवरी 1941 को पठान के वेस में फरार होने में सफल हो जाते है। 20 जनवरी 1941 को फंटियरमेल से मोहम्मद जियाउद्दीन के रूप में पेशावर छावनी पहुंचते हैं। पेशावर में 1 सप्ताह रहने के बाद अपने फारवर्ड ब्लाक के कार्यकर्त्ता भगतराम तलवार को लेकर, अफगानिस्तान की ओर कूच करते हुए, जलालाबाद होते हुए काबुल पहुंच जाते हैं। काबुल में अपनी पूरी योजना के अनुरूप वह पहचान के अभाव में रूसी दूतावास तक उनकी पहुंच नहीं हो पाती। जर्मनी दूतावास उदास रहता है। अततः इटली दूतावास के सहयोग से ओलैण्डो मजोटा के रूप में समरकंद, रूस में प्रवेश करते हैं। समरकंद से ट्रेन द्वारा मास्को तथा मास्को से बर्लिन अपनी मंजिल पहुंच में कामयाब हो जाते हैं।

जर्मनी पहुंचने पर उन्हें वहां शरण तो मिलती है। परंतु सैनिक सहायता से आना-कानी की जाती है। जर्मन सरकार नेताजी को स्पष्ट कर देती है कि जर्मन युद्ध मोर्चा भारत की सीमा से काफी दूर है, अतः सैनिक सहायता देना तब तक व्यवहारिक नहीं होगा, जब तक कोई ठोस उपलब्धि न हो।

जर्मनी में नेताजी, भारत की आजादी हेतु जर्मन सरकार द्वारा सैनिक सहायता की योजना ठुकराने के बावजूद निराश नहीं होते। वह 9 अप्रैल 1948 को जर्मन सरकार को एक गुप्त स्मरण पत्र भेजते हैं जिसमें प्रथम विश्व युद्ध में पराजित होने के बावजूद ब्रिटेन द्वारा भारत में अपनी सत्ता अभी तक बनाए रखने एवं भारत के संसाधनों से द्वितीय विश्व युद्ध लड़े जाने का उल्लेख करते हैं। अपने स्मरण पत्र में नेताजी यह भी उल्लेख करते हैं कि इस युद्ध में भारत की जनता ब्रिट्रिश सम्राज्य को पूरी तरह से पराजित देखने की इच्छुक है। जर्मन सरकार पर नेताजी के इस गुप्त स्मरण पत्र की कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। अतः नेताजी 3 मई 1941 को पूरक स्मरण पत्र देते हुए जर्मन सरकार को उस योजनाओं से अवगत कराते हैं जिस के अनुरूप धुरी राष्ट्रों द्वारा भारत में ब्रिटिश सत्ता पर तेज आघात किया जा सकता है, यही नहीं वह बर्लिन रेडियो से भी जर्मन सरकार पर एक प्रकार का दवाव डालते हैं कि वर्तमान वातावरण में ब्रिटिश साम्राज्य के विरूद्ध भारत में युद्ध छेड़ना अनिवार्य हैं। अपने में मस्त जर्मन सरकार पर नेताजी के इन प्रयत्नों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसी अवधि में जर्मन-रूसीपैक्ट समाप्त हो जाता है तथा जून 1941 में जर्मनी रूस पर आक्रमण कर देता हैं, नेताजी के लिए स्थिति प्रतिकूल हो जाती है, क्योंकि भारत की जनता की सहानुभूति रूस के साथ थी।

अंततः जर्मन एवं इटली सरकारों को भारत की स्वतंत्रता के प्रति उदासीन देखकर नेताजी इस दिशा में स्वयं आगे वढ़ते हैं तथा 2 नवंवर 1948 को वर्लिन में 'आजाद हिंद संघ' की स्थापना कर भारत की आजादी के आंदोलनों को विदेशी भूमि से संचालित करने हेतु संस्थागत बीजारोपण कर देते हैं। 45 सहकर्मियो

से प्रारंभ आजाद हिंद संघ का प्रमुख उद्देश्य हिंदुस्तान की आजादी था। आजाद हिंद संघ में ए. जी. एन. नाम्बियार, हबीबुई रहमान तथा एन. जी. स्वामी जैसे नेताजी के वफादार लोग थे। 1941 को संघ के औपचारिक उद्घाटन के अवसर पर कांग्रेसी तिरंगा झंडा लहराया गया। रविंद्र नाथ ठाकुर के जन गण मन का रूपान्तरण इसका गाना रखा गया। यही पर जय हिंद को अभिवादन, रोमन लिपि हिंदुस्तानी को राष्ट्र भाषा तथा सुभाष चंद्र बोस का संबोधन नेताजी हो गया''।

19 जनवरी 1942 को नेताजी ने प्रथम बार आजाद हिंद रेडियो सिंगापुर से अपने देशवासियों को जीवित होने की सूचना दी तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद से तब तक संघर्ष करने का आह्वान किया जब तक कि भारत स्वयं अपना भाग्य विधाता नहीं बन जाता। 25 अप्रैल 1942 को उन्होंने अपने भारतीयों को सचेत किया। ब्रिटेन से स्वाधीनता भीख में नहीं मांगी जा सकती, मातृभूमि की वेदी पर रक्त बहाकर उसे स्वयं अर्जित करना होगा। इसी भावना के तहत नेताजी बर्लिन रेडियो से लगातार भारतवासियों को भारत छोड़ो आंदोलन जारी रखने का आह्वान करते हुए इसे उन्होंने अहिंसात्मक ग्ररिल्ला युद्ध की संज्ञा दी तथा रेडियो से ही एक कुशल सेनापति की तरह इसका संचालन करते रहे। उन्होनें भारत छोड़ों आंदोलन के प्रमुख दो लक्ष्यों की घोषणा की ''भारत में युद्ध सामग्री को नष्ट करना तथा ब्रिटिश प्रशासन को निष्क्रिय करना तदानुसार निरंतर स्थानांतरण आवश्यक है इसका पूर्वानुमान ब्रिटिश हुकूमत को नहीं होना चाहिए। इस प्रकार भारत में प्रेस अधिनियम के चलते समाचार पत्रों पर लगी बंदियों के कारण इनकी कमी को आजाद हिंद रेडियो पूरी कर रहा था। इसके गुप्त प्रसारण ने अंग्रेजों की नाक में दम कर रखा था।

जर्मन सरकार के सहयोग से 'Indian Indepandence League' (आजाद हिंद संघ) राजनयिक मिशन का दर्जा प्राप्त कर चुका था। उधर 1941 में ही नेता जी ने ''हिंद'' फौज भी गठित कर ली थी, जो 12 जवानों से प्रारंभ हुई थी। इन 12 जवानों को सैन्य प्रशिक्षण हेतु जर्मन सैन्य अधिकारियों को सौंप दिया गया था। 1942 में हरविच को रेजेनवर्म कैंप में हिंद फौज के वालिटियर्स का प्रशिक्षण यूनिट बनाने का दायित्व दिया गया था। जिनकी संख्या शीघ्र ही रेजीमेंट तक पहुंच गई। अच्छी बात यह थी कि हिंद फौज में पूर्व, पद, वंश, धर्म, क्षेत्र इत्यादि का कोई भेदभाव नहीं था। 'हिंद फौज' की पहली वटालियन अक्टूबर 1942 में तैयार हो गयी। दूसरी जनवरी 1943 में तथा तीसरी फरवरी 1943 में बना प्रारंभ हो गई। फौज के सिपाहियों को जर्मन सरकार सीधे वेतन दे रही थी। ज्ञात रहे कि सुभाष चंद्र बोस को हिटलर के प्रति वफादारी की शपथ लेनी पड़ी थी, किंतु उनका जर्मन सरकार से समझौता था कि हिंद फौज जर्मन सैन्य संगठन का हिस्सा नहीं होगी, वेतन, प्रशिक्षण जैसी सुविधाओं को छोड़कर हिंद फौज का जर्मनी के साथ कोई संबंध नहीं होगा।

22 मई 1942 को नेताजी हिटलर से भेंट करने में सफल हो जाते हैं, लेकिन भेंट आशाप्रद नहीं रहती, क्योंकि हिटलर भारतीय सीमाओं के जर्मन युद्ध मोर्चे से भौगोलिक रूप से काफी दूर होने के कारण भारत की आजादी की तुरंत घोषणा, कोई ठोस उपलब्धि न होने की तर्क संगत बात कहकर नेताजी की विनय को स्वीकार नहीं करता। हिटलर के नकारात्मक रुख के चलते भारत की आजादी के लिए समर्पित नेता जी की

दृष्टि जापान की ओर जाती है। उधर जापान द्वारा सिंगापुर, मलाया आदि क्षेत्रों पर आक्रमण कर उन्हें अपने कब्जे में लिए जाने के फलस्वरूप वहां के भारतीय मूल के सैनिकों एवं अप्रवासी भारतीयों द्वारा रासबिहारी बोस के नेतृत्व में आजाद हिंद सेना एवं भारतीय स्वतंत्रता लीग का गठन किया गया (28 मार्च 1942 को चीन, मलाया, सिंगापुर, थाईलैंड के भारतीयों का रासबिहारी बोस की अध्यक्षता में टोकियों में हुए सम्मेलन में आजाद हिंद फौज के गठन का निर्णय लिया गया था। तदानुसार 14 से 23 जून 1942 को बैंकाक में भारतीयों का वृहद सम्मेलन आयोजित किया गया। भारतीय स्वतंत्रता के लिए एक अच्छा अवसर मानकर रासबिहारी बोस की अध्यक्षता में भारतीय स्वतंत्रता लीग एवं आजाद हिंद सेना गठित करने की घोषणा की गई थी। 'भारतीय स्वतंत्रता संघ' को सहकारी तौर पर स्वीकृत किया गया था, जिसके साधन एकता, विश्वास एवं बलिदान था । भारतीय स्वतंत्रता संघ की ओर से बैंकाक में आजाद हिंद रेडियो की भी स्थापना की गई। 20 जून 1943 को रास बिहारी बोस के आमंत्रण पर नेताजी टोकियो पहुंचे, जहां उनका अभूतपूर्व स्वागत किया गया। अपने स्वागत में नेताजी ने कहा कि हमें अपना सब कुछ देकर भारत की स्वतंत्रता प्राप्त करना है और इसे सुरक्षित रखना है। शत्रु की तलवार का जवाब हमें तलवार से देना है, यह तभी संभव है जब भारतीय जनता का हृदय त्याग से प्रज्वालित होगा। अतः हम लोगों को अपनी संपूर्ण शक्ति एवं उत्साह के साथ भीतर एवं बाहर भारतीय स्वतंत्रता का युद्ध जारी रखना चाहिए। अपने भाषण में नेताजी ने आगे कहा कि हमें ब्रिटिश साम्राज्यवाद के ध्वस्त होने तक संग्राम चलाना है। इस समय ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विध्वंस पर ही भारत एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में प्रकट होगा। इस संग्राम के पीछे लौटने की कोई जगह नहीं है हमें निरंतर जब तक आगे बढ़ते रहना है तब तक विजय प्राप्त न हो जाए।''

टोकियो के बाद नेताजी 3 जुलाई 1943 को सिंगापुर पहुंचे यहां हांगकांग एवं वर्मा से आए भारतीयों को संबोधित किया तथा दिल्ली चलो का नारा दिया।

5 जुलाई 1943 को रासबिहारी बोस ने भारतीय स्वतंत्रता लीग के प्रधान का पद सुभाष चंद्र बोस को सौंप दिया। परिणाम स्वरूप 21 अक्टूबर 1943 को आजाद हिंद फौज के सर्वोच्च सेनापति के रूप में स्वतंत्र भारत की अस्थायी सरकार बनाई गई। इसी माह हिन्नान में 'इंडियन इंडिपेन्ड़ेट लीग' का बहुत बड़ा सम्मेलन हुआ, जिसमें 'आजाद हिंद सरकार' के मंत्रियों को शपथ दिलाई गई तथा नेताजी का जोशीला भाषण हुआ। इस अस्थाई सरकार में स्वयं नेताजी के पास प्रधानमंत्री पद के अलावा युद्ध एवं विदेश विभाग, केप्टन लक्ष्मी सहगल के पास महिला संगठन, के.एम.ए. अय्यर प्रचार एवं प्रसार, कर्नल आई. ए. सी. चटर्जी अर्थव्यवस्था तथा श्री रासविहारी बोस परामर्शदाता थे3। 25 अक्टूबर को जापान ने इस अस्थाई सरकार को मान्यता देते हुए भारत की स्वाधीनता के युद्ध में हर संभव सहयोग एवं समर्थन देने का आश्वासन दिया, इसके पश्चात् जर्मनी, बर्मा, फिलीपीन्स, इटली, चीन, कोटिया, थाइलैंड, मसूरी आदि ने भी इस प्रकार की मान्यता दे दी। नवंबर के प्रथम सप्ताह वृहत्तर पूर्व एशिया सम्मेलन में जनरल तीजों ने घोषणा में आयोजित कि, की अडंमान निकोबार द्वीप समूह आजाद हिन्द फौज सेना को सौंप दिया जायेगा। इस घोषणा पर नेताजी ने अपार प्रसन्नता व्यक्त

की। बोस ने 31 दिसम्बर 1943 को भारत के इस प्रथम स्वतंत्र क्षेत्र में कदम रखा तथा अंडमान का नाम 'शहीद' एवं निकोबार का स्वराज्य द्वीप रखा व तिरंगा फहराने का कीर्तिमान रचा।

आजाद हिंद फौज में उस समय कुल 13000 सिपाही थे और बोस इस संख्या को 50,000 तक ले जाना चाहते थे किंतु जापानी सेना के पास 30,000 से अधिक सिपाहियों के प्रशिक्षण की कोई व्यवस्था नहीं थी, नेताजी की परिकल्पना दस- दस हजार की तीन टुकड़ियाँ एवं 20000 क्षमता की बालंटियर फोर्स बढ़ाने की थी।

नेताजी के नेतृत्व में 24 अक्टूबर 1943 को पाडंग की रैली में 'आजाद हिंद सरकार' ने ब्रिटिश एवं अमेरिका के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। यही नेताजी ने फौज की सलामी लेते हुए दिल्ली चलने का नारा दुहराया। 4 जनवरी को फौज की अग्रणी टुकड़ी वर्मा पहुंच गई। 3 फरवरी 1944 को फौज को कूंच करने का आदेश दिया गया। तथा 4 फरवरी 1944 को भारतीय स्वतंत्रता की असली लड़ाई छिड़ गई। यद्यपि जापानी सैनिक नेतृत्व आजाद हिंद सेना द्वारा मोर्चे पर पूरी ताकत लगा जाने के इच्छुक नहीं थे, फिर भी 13 मार्च को फौज भारतीय सीमा पार करके अंदर तक आ गई। 22 मार्च को जापानी सेना का भी दस्ता आ मिला। आजाद हिंद सेना के 31 वें दस्ते ने कोहिमा पर विजय प्राप्त कर ली तथा 21 अप्रैल को इसे अपने कब्जे में ले लिया। 25 अप्रैल से 6 मई तक गुरिल्ला रेजीमेंट ने अपूर्व युद्ध कौशल दिखाया लेकिन ब्रिटिश भारतीय सेना का 23 वां डिवीजन पतेल के दक्षिण पूर्व में अपनी स्थिति मजबूत कर चुका था। 7 मई को उसने आजाद हिंद फौज को स्वजौल से पीछे हटने को बाध्य कर दिया। इम्फाल पर सैनिक अभियान रोका जा चुका था, तथा दूसरी ओर ब्रिट्रिश सेनाओं को समय पर सहायता मिलने से उन्होने आजाद हिंद फौज को बार-बार पीछे करने की व्यवस्था कर ली थी। मानसून जल्दी, एवं जोर से आया, सम्पूर्ण क्षेत्र कीचड़ एवं मिट्टी का दल दल बन गया जो कि मलेरिया एवं पेचिस जैसे रोगों को जन्म दे रहा था। अतः सैनिकों को विवस होकर पीछे हटना पड़ा।

जून की लगातार बारिश, कीचड़, दलदल, भूख, मलेरिया आदि की वजह से 15 जून तक इस सीमा पर 1000 से कम सैनिक ही शेष बचे थे। इसी प्रकार दूसरी रेजीमेंट में बचे 750 सैनिकों को चार टुकड़ियों में विभाजित कर पुनः तैनात करना पड़ा। परिणाम स्वरूप 18 जुलाई 1944 को सुभाष रेजिमेंट की दूसरी एवं तीसरी बटालियनों को वापिस लौटना पड़ा। इंफाल के मार्चे पर 6000 सैनिक गए थे जिसमें से 400 सैनिक शहीद हो गए, 800 ने हथियार डाल दिए, लगभग 1500 भूखे, प्यासे एवं रोगों से मर चुके थे। सेनापति सुभाष चंद्र बोस ने सेना वापसी के संबंध 14 अगस्त 1944 को स्पष्ट किया कि आक्रमण स्थगित होने के पश्चात हमारे सैनिकों का मोर्चे पर बने रहना हानिप्रद था। मौसम बदलते ही हम पुनः मोर्चाबंदी कर एक बार फिर शत्रु पर आक्रमण करेंगे जिसमें सैनिकों के रण कौशल एवं शौर्य के चलते हमारी विजय निश्चित है। इस प्रकार अद्वितीय शौर्य प्रदर्शन एवं समर्पण पूर्ण राजनीति के बावजूद भी नेताजी को इस स्वतंत्रता संग्राम में सफलता नहीं मिली जिससे निम्न कारण गिनायें जा सकते हैं-

1. जापानी सैनिक नेतृत्व आजाद हिंद फौज को वर्मा में भारत पर किए जाने वाले आकमण में तैनात

ISSN 2393-851X

किए जाने के इच्छुक नहीं था, क्योंकि जापानी सैनिक नेतृत्व के अनुमान से सैनिक उतनी कुशलता से प्रतिरोध नहीं कर सकते थे, जितने की जापानी सैनिक।

2. जापानी सेना आजाद हिंद सेना की पूरी क्षमता को इस मोर्चे पर तैनात किए जाने के विरुद्ध थी उनका मानना था कि सेना की वह ताकत बचाकर रिजर्व की जानी चाहिए। अधिक जोश एवं उत्साह के चलते जापानी सैनिक नेतृत्व की उपर्युक्त सलाह न माना जाना संभवतः पराजय का कारण बना।

3. आजाद हिंद फौज के सिपाहियों को अल्पकालिक प्रशिक्षण देकर शीघ्र तैयार किया गया था, अतः उनमें वह व्यवसायिक दक्षता नहीं आ पाई थी जो अपेक्षित जी स्वयं नेता जी ने इस बात को स्वीकार किया था, कि उनमें सैनिक अफसरों का सामान्य स्तर निम्न था।

4. पुर्जीवारा ने भी कहा था आजाद हिंद फौज के सैनिकों का आचरण अच्छा और अनुशासन बद्ध तो था। किंतु दॉव पेचों का स्तर, प्रशिक्षण एवं नेतृत्व बहुत घटिया था। विशेष रूप से उनमें आक्रमण पद्धति एवं छमता की कमी थी।

5. जापानी सेना द्वारा हथियार उपलब्ध कराए गए थे वह चले चलाये घिसे पिटे हथियार थे, तोपों के स्टीगर ही नहीं थे, कई बंदूकों से गोली ही सही निकलती थी।

6. मोर्चे पर जापानी कामांडर हिकारी किकान का व्यवहार आजाद हिंद फौज के अफसरों के साथ ठीक नहीं था, मनमुटाव इतना बढ़ गया था कि वह 'कामरेड इंडियन्स' की जगह ये सैनिक 'सेमलेस इंडियंस' नजर आने लगे। जापानी कमांडर के इस व्यवहार ने भारतीय सैनिकों का मनोबल गिराने का काम किया।

7. इरावती नदी पर आजाद हिंद सेना के कुछ अफसरों ने अपनी टुकड़ी के सैनिकों को आत्मसमर्पण के लिए उकसाया था तथा लगभग 800 सैनिकों ने विट्रिश सेना के समक्ष आत्म समर्पण भी किया था।

सेना की मोर्चे से वापसी के लिए उपर्युक्त कारण स्पष्ट रूप से जवावदार थे। सेना की वापसी के बावजूद भी नेताजी मायूस नहीं हुए थे, उनका कहना था कि जापानी सेना का आत्मसमर्पण आजाद हिंद सेना का आत्मसमर्पण नहीं है। स्पष्ट है कि सच्चा क्रांतिकारी न तो कभी अपनी पराजय स्वीकार करता है न ही हतोत्साहित होता है। जापान के आत्मसमर्पण के बाद नेताजी ने बर्मा जाने का निश्चय कर लिया था अतः वर्मा जाने के पूर्व 24 अप्रैल 1945 को अपने सैनिकों को संबोधित करते हुए कहा था ''मैं बोझिल ह्रदय लेकर वर्मा जा रहा हूं। हम स्वतन्त्रता संग्राम के पहले दौर में पराजित हो गये है। संग्राम के अभी कई दौर शेष हैं। पहले दौर में पराजित होने पर भी मुझे निराशा का कोई कारण दृष्टिगत नही होता। .... इम्फाल के मैदानों, अराकान के पहाड़ो और जंगलों तथा वर्मा के दूसरे इलाकों में शत्रु के विरूद्ध युद्ध में आपकी बहादुरी के कारनामें हमारे स्वतन्त्रता संघर्ष के इतिहास में सदा अमर रहेगें।.................. इस संकट की घड़ी में, मेरा केवल एक ही आदेश है यदि युद्ध करते हुए गिरो तो तुम्हारे हाथ में राष्ट्र का तिरंगा झंड़ा ऊँचा लहरा रहा हो,

.....वीरो की तरह गिरो। सम्मान और अनुशासन का उच्चतम आदर्श कायम रखो। तुम्हारे इस परम-त्याग से भारत की भावी पीढ़ी, गुलाम नही स्वतंत्र पैदा होगी।

अगले दिन यानी 15 अगस्त 1945 को स्पेशल आर्डर ऑन द जापानीज सरैण्डर में अपने सहकर्मियों को संबोधित करते हो उन्होंने कहा कि ''मातृभूमि को स्वतंत्र कराने के लिए हम ऐसे संकट में फंस गये है जिसको स्वप्न में भी नही सोचा था। आपको लगता हो की भारत की मुक्ति के मिशन में आप असफल रहे। किन्तु यह असफलता सामयिक है। .....देश की अड़तीस करोड़ जनता हिन्द फौज पर आशा लगाये बैठी है। दिल्ली की तरफ जाने वाले मार्ग अनेक है, दिल्ली ही हमारा पड़ाव है, पृथ्वी की कोई शक्ति भारत को गुलाम नहीं रख सकती। भारत बहुत जल्द आजाद होगा।

उसी दिन उन्होने पूर्वी एशिया प्रवासी भारतीयों को संदेश दिया कि ''अपने भारत-मुक्ति के लिए अपने जन, धन, और संपत्ति देकर देशभक्ति तथा आत्म-त्याग का ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत किया है। मेरे 'पूर्ण सैन्य संगन' के आह्वन पर आपकी तत्परता एवं उत्साह-पूर्ण प्रतिक्रिया को मैं कभी विस्मृत नहीं कर सकूंगा। आप अपने पुत्र और पुत्रियां लगातार आजाद हिन्द फौज और रानी झांसी-रैजिमेण्ट में प्रशिक्षण के लिए भर्ती करते रहो ..... आपसे भी अधिक मुझे खेद है कि आपके कष्टों और त्याग का फल तुरंत नहीं मिला। इस सामयिक असफलता से आप निराश न हों। भारत के भाग्य के प्रति अपना विश्वास एक क्षण-भर को भी डगमगाने न दीजिए।

नेताजी गांधीजी के प्रति अगाध श्रद्धा रखते थे, किंतु गांधीवाद को आधुनिक समाज रचना के लिए बिल्कुल अव्यवहारिक एवं हानिकारक मानते थे गांधी जी एवं उनके अनुयाई नेताजी की इस सोच को वामपंथी बताते थे। जब 1939 में नेताजी द्वारा कांग्रेस अध्यक्ष पुनः निर्वाचित हुये तो गांधी जी एवं उनके अनुयायियों की सोच थी कि नेताजी के रहते कांग्रेस वामपंथ की राह पकड़ सकती है और यदि ऐसा हुआ तो यह गांधी जी एवं उनके अहिंसा के सिद्धांत की पराजय होगी। अतः उन्होंने न केवल नेता जी को कांग्रेस अध्यक्ष पद से त्यागपत्र देने को विवश किया, बल्कि परोक्ष रूप से इतना अपमानित किया कि उन्हें कांग्रेस दल ही छोड़ने को विवश होना पड़ा। इस तरह गांधी एवं गांधीवादियों की नेताजी के प्रति घृणा एवं नेहरू के साथ छोड़ने, समाचार पत्रों की अभद्र टिप्पणियों तथा ब्रिटिश सरकार द्वारा निरंतर जेल में विरूद्ध रखने जैसी विषम परिस्थितियों ने नेताजी को स्वदेश छोड़कर विदेशी भूमि से स्वतंत्रता आंदोलन संचालित करने के भाव ने नेताजी को भारत भूमि छोड़ने को विवश किया। यदि भारत में गांधी पंथ से नेताजी की इतनी उपेक्षा नहीं होती तो संभव था कि नेताजी देश न छोड़कर भारत भूमि से ही अंग्रेजों के विरुद्ध मोर्चा खोलते, जिसके लिए वह बार-बार जोर देते रहते थे। यदि ऐसा होता तो संभव था कि अंग्रेज द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान ही अर्थात सन 1947 से पहले देश को आजाद करने विवश होते।

स्वदेश त्यागते समय यह नेता जी अपने निजी जीवन अपना राजनीतिक जीवन दांव पर लगाया तो इसलिए कि वह ब्रिटिश सत्ता के शत्रु पक्ष का सहारा लेकर भारत को विदेशी सत्ता के चंगुल से शीघ्र आजाद कर

सकें। विदेश में जर्मन मोर्चे की भारत सीमा से काफी दूरी ऐसा व्यवहारिक कारण था, जिसकी वजह से जर्मन सरकार नेताजी को भारत की आजादी हेतु सैनिक सहायता नहीं दे सकी। नेताजी जापान पहुंचते हैं, रासबिहारी बोस अपनी आजाद हिंद फौज का नेतृत्व नेताजी को सौंप देते हैं। नेता जी द्वारा आजाद हिंद फौज के सेनापति के रूप में विदेशी भूमि पर भारत की अस्थायी सरकार का गठन एवं 12 देशों की सरकारों द्वारा भारत की इस अस्थाई सरकार को मान्यता देना तथा इसी अस्थाई स्थायी सरकार के नेतृत्व में आजाद हिंद सेना द्वारा भारत की सीमाओं में प्रवेश कर ब्रिटिश हुकूमत को कोहिमा एवं इंफाल से उखाड़ फेंकने का कीर्तिमान रचना अपने आप में नेताजी सुभाष चंद्र बोस के भारत की आजादी में दिये गये योगदान को रेखांकित करता है। यद्यपि मौसम की प्रतिकूलता व अन्य कई कारणों से नेताजी की फौज को पीछे हटना पड़ा परंतु जो नेताजी ने त्याग व समर्पण के भाव से अद्वितीय प्रयास किये, उसके लिये वह भारतीय स्वतंत्रता के इतिहास में सदा के लिये अमर हैं।

संदर्भ -

1. डॉ. जयश्री, स्वतन्त्रता संग्राम के अप्रीतम नायक, नेताजी सुभाष, अभिनव ज्योति, आगरा, 1998.
2. सत्य सकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा, भाग 1, ए.पी.एच. पब्लिशिंग, नई दिल्ली, 2013.
3. चटर्जी, रेवा, नई दिल्ली, 2013
4. गुप्ता, आशा, सुभाष चंद्र बोस-निसंग क्रांतिपथिक.
5. खानम डॉ नगमा, सुभाष चन्द्र बोस राजनीतिक एवं दार्शनिक विचार, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली 2011.
7. वही